समयसार, ३३ गाथा का अन्तिम है न? पढ़ा गया है परन्तु फिर से — **इस प्रकार यह अज्ञानी जीव....** यहाँ से है न? **अज्ञानी जीव अनादिकालीन मोह के सन्तान से....** मिथ्याश्रद्धा और राग-द्वेष-मोह के सन्तान से। आहाहा! **निरूपित आत्मा....** अथवा उसरूप माननेवाला आत्मा अथवा अज्ञानी; **आत्मा और शरीर के एकत्व के संस्कार....** भगवान ज्ञायक चैतन्यस्वभावी ज्ञायक सर्वज्ञस्वरूपी प्रभु के साथ शरीर, कर्म और कर्म के निमित्त की उपाधि-शुभ-अशुभभाव आदि, उसके **एकत्व के संस्कार से अत्यन्त अप्रतिबुद्ध था,....** अत्यन्त अज्ञानी था। अपना स्वरूप क्या है? गुण क्या है? पर्याय क्या है? राग क्या है? पर क्या है? — यह बिल्कुल नहीं जानता। आहाहा!

श्रोता : सभी जीव ऐसे हैं?

पूज्य गुरुदेवश्री : अनादि से सभी जीव इस प्रकार ही हैं। आहाहा! सर्वज्ञ स्वभावी ज्ञायक का अस्तित्व, विद्यमान चीज है, उसको न जानकर पुण्य और पाप के रागादि भाव तथा कर्म और शरीरादि ये मेरे हैं — ऐसा संस्कार; मेरा आनन्द और ज्ञान है, यह संस्कार नहीं। आहाहा! राग और पुण्य और पाप के विकल्प, ये मेरे हैं — ऐसा एकत्व संस्कार, इस कारण **अत्यन्त अप्रतिबुद्ध था।** आहाहा!

वह अब तत्त्वज्ञानस्वरूप ज्योति के प्रगट उदय होने से.... आहाहा! प्रभु! तू तो राग और शरीर से भिन्न है न नाथ! आहाहा! तेरी चीज में तो अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द, अनन्त शान्ति, पूर्ण पड़ी है न प्रभु! तू राग से और शरीर से भिन्न है — ऐसा सन्तों ने प्रसिद्ध

किया है। आहाहा! तब उसको अन्तर में जाकर आत्मा ज्ञायकस्वरूप चैतन्यबिम्ब, राग और पुण्य के विकल्प की दु:खदशा से भिन्न, आनन्दस्वरूप प्रभु... आहाहा! ऐसा तत्त्वज्ञान / भान हुआ, सम्यग्दर्शन हुआ। **तत्त्वज्ञानस्वरूप ज्योति....** चैतन्यज्योति प्रगट हुई। आहाहा! जो पुण्य और पाप और रागादि संस्कार मेरा है — ऐसा प्रगट था, उसके स्थान में भगवान (आत्मा) राग से भिन्न मेरी चीज है — ऐसा तत्त्वज्ञान का स्वरूप प्रगट हुआ। आहा!

नेत्र के विकार की भाँति.... आँख में जैसे.... क्या कहलाता है? (पीलिया) पीलिया, हमारे (गुजराती में) कमलो कहते हैं। पीलिया के कारण जो सफेद चीज भी पीली दिखती थी, वह विकार नाश होने से, **तब वे ज्यों के त्यों यथार्थ दिखायी देने लगे....** जैसी चीज थी, वैसी देखने लगा। आँख का विकार नाश होने से.... इस प्रकार यह तो दृष्टान्त (हुआ)। **पटल समान आवरण कर्मों के भलीभाँति उघड़ जाने से....** आहाहा!

श्रोता : कर्म उघड़ जाए....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह उघड़ जाते हैं अर्थात् नाश होता है। **कर्मों के भलीभाँति उघड़ जाने से प्रतिबुद्ध हो गया...** एकत्वबुद्धि का नाश हुआ, वह कर्म का था, आहाहा! ऐसा आत्मा प्रगट तत्त्वज्ञान से प्रगट हुआ, मैं तो आनन्द और ज्ञान हूँ। मुझमें अल्पज्ञता ही नहीं है और रागादि मैं नहीं — ऐसा अनुभव / दृष्टि में आया। है? **प्रतिबुद्ध हो गया....** ज्ञानी हो गया, सम्यग्दृष्टि हुआ। आहाहा! **और साक्षात् दृष्टा आपको अपने से ही जानकर....** साक्षात् प्रभु तो देखनेवाला दृष्टा है। रागादि पर चीज तो दृश्य है, मैं तो दृष्टा हूँ। रागादि, शरीर आदि परचीज तो ज्ञेय है, मैं तो ज्ञाता हूँ। आहाहा! **आपको अपने से ही जानकार....** देखो भाषा! भगवान ज्ञानस्वरूप आनन्दस्वरूप प्रभु, आप आपको अपने से अपने को अपने से अपनी ज्ञान आनन्द की पर्याय से अपने को जाना। आहाहा! राग से आत्मा जानने में आता है — ऐसा आत्मा है ही नहीं, ऐसा कहते हैं। यह अपने से भगवान ज्ञान प्रवाह ध्रुव उस पर दृष्टि करने से जो ज्ञान की पर्याय निर्मल हुई, उसके द्वारा अपने को अपने से जाना। आहाहा!

श्रोता : इन्द्रियज्ञान और मन:पर्ययज्ञान का क्या ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह बाहर गया दूर। इन्द्रियज्ञान और शास्त्रज्ञान, वे सब दूर रह गये। ऐसी बात है प्रभु! आहाहा!

आपको अपने से ही जानकर.... अपना स्वरूप जाना, ज्ञान के साथ में जो राग-दु:ख भी बाकी है, वह भी ज्ञान ने जाना। पहले तो उसको भी नहीं जानता था और अपने को भी नहीं जानता था। आहाहा! **आपको अपने से जानकर....** अपना ज्ञानानन्दस्वभाव मैं हूँ — ऐसा जाना और उसमें रागादि बाकी हैं, दु:खरूप है (- ऐसा जानकर) भिन्न हो गया, परन्तु अस्थिरता बाकी रह गयी। आहाहा! तो सम्यग्ज्ञानी जीव, सम्यग्दृष्टि जीव अपने को अपनेरूप जाना-ज्ञान की पर्याय, आनन्द की पर्याय हुई, उसको उस पर्यायरूप जाना और राग बाकी रहा, वह दु:खरूप है, उसको भी जाना। आहाहा! मुझमें अभी दु:ख का त्याग नहीं है....

श्रोता : वेदन है या नहीं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वेदन है न प्रभु! इसके लिए तो कहते हैं — सम्यग्दृष्टि को दु:ख का वेदन है - ऐसा जाना। मैं आत्मा हूँ — ऐसा आनन्द का वेदन भी आया और साथ में राग-द्वेष परिणाम हैं, अव्रतभाव, अत्यागभाव, दु:खभाव, उसका वेदन मुझे आया, यह भी जाना। समझ में आया ? आहाहा!

मुझे आज सबेरे श्रीकृष्ण की बहुत बात आयी थी। वह तो तीर्थंकर का आत्मा है। श्रीकृष्ण, तीर्थंकर का जीव है। आहाहा! भगवान के समय में उसको आत्मज्ञान हुआ था, सम्यग्दर्शन हुआ था, नेमिनाथ भगवान के समय में, आहाहा! भान हुआ था (कि) मैं तो आत्मा हूँ; और मैं तो भविष्य में तीर्थंकर होनेवाला है, आगामी चौबीसी में तेरहवें तीर्थंकर-भगवान होनेवाले हैं। परन्तु पहले (निज का) भान हुआ। आहाहा! और जब, जब द्वारिका नगरी सुलगती है, सोने के गढ़ और रत्न के कंगूरे देवताओं ने बनाये, वे लाखों राजकुमार, लाखों रानियाँ, वह द्वारिका सुलगी उसमें ***सर्रसर्रसर्रसर्र*** बलदेव वासुदेव महापुरुष, उत्तम पुरुष, वे पानी की बाल्टियाँ डालते हैं (अग्नि) बुझाने के लिये। वह पानी केरोसिन बन जाता है।

श्रोता : उस समय तो केरोसिन की शोध नहीं हुई थी।

पूज्य गुरुदेवश्री : शोध नहीं थी परन्तु केरोसिन की तरह जलाये ऐसी ताकत पानी में होती है। जब पानी केरोसिन अन्दर में होता है न कुएँ में। पानी के बदले केरोसिन होता है, ऐसे पानी का केरोसिन हो गया। आहाहा!

यह लाखों रानियाँ और लाखों राजकुमार जलते हैं। अरे! मुझे बचाओ रे बचाओ, भाई! पिताजी! मुझे बचाओ! कौन बचाये? आहाहा!

श्रोता : गुरु बचाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो अन्तर में शरण में जाये तो आत्मा बचाये; बाकी कोई नहीं। आहाहा! ये भाई सुलगते हैं। आहाहा! (द्वारिका) माता-पिता को रथ में बैठाकर बाहर निकालते हैं, माता-पिता को तो निकालें... आहाहा! बलदेव और वासुदेव बैल की तरह रथ को हाँकते हैं; पिताजी-माताजी बैठे हैं। जहाँ द्वारिका का अन्तिम द्वार-दरवाजा आया, ऊपर से स्वर्ग के देव का हुक्म आया-निकालना छोड़ दो, तुम्हारे माता-पिता नहीं बचेंगे, छोड़ दो। आहाहा! वे भाई वह राग छोड़ देते हैं, माता-पिता ऐसे सुलगते हैं-जलते हैं। आहाहा! ये ज्ञानी-धर्मात्मा हैं, आहाहा! परन्तु राग आता है। राग है न? अस्थिरता का राग, अभी दुःख है। इस माता को देखकर... अर..र!

इन बलदेव को कृष्ण कहते हैं भाई! जिनकी आठ हजार देव सेवा करते थे, आहाहा! वे देव कहाँ गये? जिन्हें हजारों राजा चँवर ढोरते थे, वे कहाँ गये? आहाहा! भाई! हम कहाँ जायेंगे? श्रीकृष्ण कहते हैं। बलदेव कहते हैं, भाई! हम पाण्डवों के पास जायें। भाई! हमने पाण्डवों को देश से निष्कासित किया है न? भले ही देश से निष्कासित किया (परन्तु) वे सज्जन हैं, हम वहाँ जायेंगे। आहाहा! यह तो सर्वज्ञ से सिद्ध हुई वस्तु है। आहाहा! रास्ते में जाते हैं, वहाँ प्यास लगती है, तीर्थंकर का जीव और आत्मज्ञानी! आहाहा! प्यास लगती है, भाई! इस कौशम्बी वन में पैर नहीं भर सकता (चल नहीं सकता) भाई! मैं, मुझे बहुत प्यास लगी है, अब मैं एक कदम भी नहीं चल सकता। आहाहा! भाई! तुम यहीं रहो, मैं पानी लाता हूँ - बलदेव कहते हैं। वहाँ लोटा-लोटा कहाँ था? बड़ के पत्ते एकत्रित करके सली डालकर लोटा जैसा बनाया, बहत्तर कला के

जानकार बलदेव पानी लेने गये, कृष्ण यहाँ सो रहे थे, महा-उत्तम पुरुष हैं, पैर में पद्ममणि है, पैर में। उनका भाई-जरतकुमार बारह वर्ष से वन में रहता था। भगवान ने कहा था कि इस जरतकुमार के कारण कृष्ण का शरीर पड़ जायेगा। बारह वर्ष तक बाहर रहा। वह मानो कि यह हिरण है, ऐसा नजदीक आता है वहाँ प्रभु! आप यहाँ कहाँ से? मैं बारह-बारह वर्ष से जंगल में रहता था, यह क्या! आहाहा! रोता है। भाई! तू यहाँ से चला जा बापू! बलदेव अभी आयेंगे तो तुझे मारेंगे। भाई! मैं कहाँ जाऊँ। कौशतुभ मणि है, बहुत कीमती, अरबों... अरबों... अरबों रुपयों की कीमत का, अरबों में न मिले ऐसी। वासुदेव हैं और उत्तम पुरुष हैं। यह लेकर पाण्डवों के पास जा, बताना, वे तुझे रखेंगे। आहाहा! वह जाता है और जहाँ बलदेव आता है, वहाँ देह छूट जाता है। आहाहा!

'ए तरसे तरफडे त्रिक मो नहीं कोई पानी नो पानार' यह सज्झाय आती थी, हमारी दुकान में पढ़ते थे न जब। तरसे तरफड़े त्रिक मो.... समकिती ज्ञानी आनन्द में रहनेवाला भी अभी राग का-अस्थिरता का त्याग नहीं, इसलिए... आहाहा! 'नहीं कोई पानी नो पानार रे, सहजानन्दी रे आत्मा सूतो कईं निश्चिन्त रे, मोहतणा रे रणिया भ्रमें, जाग जाग मतिवन्त रे' ये सज्झाय आती थी। हमारे-श्वेताम्बर में चार सज्झायमाला है। एक-एक में २००-२५० श्लोक आते हैं। हमें निवृत्ति थी, पिताजी की दुकान थी, छोटी उम्र में सब १८-१९ वर्ष से हम तो यही करते थे, व्यापार भी करते थे। आहाहा! आहाहा! 'जाग जाग मतिवन्त! लूटे जगत ना जन्त' ये लुटेरे तुझे लूटते हैं, मैं तेरी स्त्री और मैं तेरा पुत्र और मैं तेरा बाप, आहाहा! 'नाखि वांक अनन्त' तब किसलिए विवाह किया था? युवा अवस्था में मुझसे विवाह किया तो वृद्धा से विवाह करना था न? भोग का त्याग करते हो तो... आहाहा! 'नाखि वांक अनन्त विरला कोई उगरंत' आहाहा!

यह शान्तिनाथ भगवान जब दीक्षित होते हैं - चक्रवर्ती, कामदेव, तीर्थंकर — छियानवें हजार स्त्रियाँ, एक-एक स्त्री की हजार देव सेवा करें, वहाँ उन्हें वैराग्य होता है.... अब यहाँ प्रत्याख्यान की बात चलती है न? आत्मज्ञान तो है, सम्यग्दर्शन है। आहाहा! अब राग के त्याग की बात! राग है, दुःख है, ख्याल में आया है, सब ज्ञानी को। अब उस राग का त्याग करने का भाव आया। आहाहा! समझ में आया? जंगल में जाते हैं तो रानियाँ

आती हैं और बाल खींचती हैं। हे स्त्रियों! मैं रहा था वह तुम्हारे कारण नहीं रहा था; मैं राग के कारण रहा था। मैं समकिती हूँ, ज्ञानी हूँ परन्तु मुझमें राग था, मुझमें दुःख था, मुझे पता है भाई! आहाहा! हे रानियों! अब मेरा वह राग मर गया, अब तुम मुझे ललचा नहीं सकती हो, आहाहा! छोड़ दो, चली जाओ। मैं तो आत्मा के आनन्द में जाता हूँ। आहाहा! सम्यग्दर्शन तो है, तीन ज्ञान है, आहाहा! परन्तु अन्दर राग का भाव-पुण्य-पाप का भाव दुःखरूप था। वह ज्ञान में था कि मुझे दुःख है, मुझे इतना आनन्द नहीं आया; जैसा पूर्णानन्द का नाथ भगवान, उसके अवलम्बन से पूर्णानन्द होना चाहिए, वह मुझमें नहीं है। आहाहा! मुझमें तो अल्प आनन्द आया और साथ में मुझे दुःख भी वेदन में दिखता है। आहाहा! ऐसा जीव... वह तो तीर्थंकर थे, उनकी तो बात कहाँ करना? परन्तु ऐसा जीव अपने को जानकर और श्रद्धान करके... आहाहा! **उसी का आचरण करने का इच्छुक....** आहाहा! वह जानता है कि मुझमें अभी राग-द्वेष-पुण्य-पाप का — दुःखरूप का आचरण मुझमें है तो अब उस स्वभाव का आचरण करने का इच्छुक समकिती... आहाहा! सब शून्य लगता है फिर उसे। मेरा नाथ भगवान आनन्द से भरपूर (है), वहाँ मैं जाऊँ। यह रागादि पुण्य-पाप का भोग का भाव, वह दुःखरूप मेरे वेदन में आता है। आहाहा! यह उसी का आचरण-राग का — पुण्यभाव का आचरण था। अभी समकिती ज्ञानी को भी, आहाहा! इतना शुभ-अशुभभाव का आचरण दुःखरूपमय वेदन में आता है, तो अब वह समकिती ज्ञानी कहता है, आहाहा! **आचरण करने का इच्छुक....** मेरे आनन्द के नाथ में मैं रमूँ, यह आचरण करने का इच्छुक। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

सम्यग्दृष्टि है, सम्यग्ज्ञान हुआ है, अनुभव हुआ है; वह गुरु के पास जाकर इच्छा करता है। आहाहा! अनुभवी है, ज्ञानी है, राग का और आनन्द का वेदनवाला है। आहाहा! वह अपने स्वरूप का आचरण करने का इच्छुक है। आहाहा! पाठ में है न? '**यैवानुचरितकुमाः**' संस्कृत में है। 'काम'। आहाहा! मेरा प्रभु आनन्दस्वरूप में मुझे भान हुआ है, मेरे आनन्द में रमने का -आचरण का अभिलाषी हुआ हूँ। आहाहा! समझ में आया? 'निजपद रमै सो राम कहिये' आहाहा! आनन्द के नाथ में रमने की इच्छा मुझे हुई है, प्रभु! आहाहा! आतमराम! आनन्द के झूले में झूलता प्रभु। आहाहा! मुझमें यह राग

और द्वेष का दुःख है, यह मेरे आचरण में है, अव्रत का भाव (है) अब मैं तो अपने स्वरूप का आचरण करने का अभिलाषी हूँ, प्रभु! आहाहा! यह सम्यग्दृष्टि जीव तीन ज्ञान का धनी भी ऐसी (भावना भाते हैं)। आहाहा!

उसी का आचरण मैं आनन्द प्रभु, आहाहा! सर्वज्ञस्वरूपी अनन्त आनन्द का नाथ स्वरूपी मैं - ऐसा मुझे ज्ञान हुआ, अनुभव हुआ, भान हुआ, परन्तु अभी मेरे आचरण में राग और द्वेष का आचरण है, वह मुझे दुःख का आचरण है, प्रभु! तो अब मेरे आनन्द का आचरण करने का मैं अभिलाषी हूँ; इस दुःख के आचरण के दुःख को छोड़ने का — त्यागने का मैं अभिलाषी.... आहाहा! **होता हुआ पूछता है....** है ? सम्यग्दृष्टि ज्ञानी-धर्मात्मा को पूछते हैं। ओहोहो! इतना तो विनय है। कामी तो है, इच्छा तो है, इच्छा उत्पन्न हुई, विकल्प तो है, आहाहा! और गुरु की विनय करते हैं, वह भी विकल्प है, राग है, दुःख है। आहाहा! वह अपना आचरण करने का इच्छुक होता हुआ, उसी का नाम जिनको श्रद्धा-ज्ञान आत्मा का हुआ, उसका आचरण करने का अभिलाषी। अर्थात् अपनी पर्याय में राग और द्वेष का आचरण शुभाशुभ का है, अव्रतभाव है, अत्यागभाव है, अत्यागभाव का वेदन है। आहाहा! वह अपने स्वरूप का आचरण करने का मैं अभिलाषी गुरु से पूछता हूँ। आहाहा! सम्यग्दर्शन हुआ, सम्यग्ज्ञान हुआ तो तुझे तो सब पता है ही। १७-१८ गाथा में आता है न ? सम्यग्दर्शन हुआ, मैं आत्मा आनन्द हूँ तो इस श्रद्धा में ऐसा आया कि मैं उसमें आचरण करूँगा तो कर्म का नाश होगा — ऐसा श्रद्धा में आया है। १७-१८ गाथा, समयसार में ऐसा आया है। आहाहा!

भगवान आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वरूप का भाव हुआ। आहाहा! समझ में आया ? अब वह अन्दर में जाने का अभिलाषी - स्वरूप में रमण करने का (अभिलाषी) आहाहा! तो वह धर्मी / समकिती जीव, मुनि को पूछता है, श्रद्धा में तो आया है कि मैं जितना स्वरूप में अन्दर रहूँगा, उतना अशुद्धता का-कर्म का नाश होगा - ऐसा तो सम्यग्दर्शन में - श्रद्धा में आ गया है। यह १७-१८ गाथा में है। समझ में आया ? आहाहा!

मार्ग तो देखो! आहाहा! मेरी चीज, मैं शुद्ध चैतन्य हूँ, अतीन्द्रिय अपरिमित सर्वज्ञस्वभावी.... ज्ञायकस्वभावी कहो, सर्वज्ञस्वभावी कहो, 'ज्ञ' स्वभावी कहो, ज्ञानस्वभावी

अकेला आत्मा — ऐसा मुझे भान हुआ है परन्तु प्रभु! मेरे आचरण में अभी राग और पुण्य-पाप का आचरण पर्याय में है, अव्रतभाव/अत्यागभाव है। समझ में आया? आहाहा! उस मेरे स्वरूप का आचरण करने का मैं अभिलाषी हूँ और यह रागादिक दुःख का आचरण छोड़ने का मैं अभिलाषी हूँ। आहाहा! वह पूछता है। पूछता है तो विकल्प है न? बालचन्दजी! गाथा बहुत अच्छी आ गयी है। आहाहा! आनन्द का नाथ अन्दर से जागकर उठता है। आहाहा! तब ऐसा कहता है कि प्रभु! मुझे तो अब मेरे स्वरूप का आचरण करने का मैं इच्छुक हूँ, मेरी पर्याय में अत्यागभाव, भोगभाव, रागभाव, पापभाव, पुण्यभाव का मेरी पर्याय में अव्रत का आचरण है, दुःख का आचरण है — ऐसा मेरे ज्ञान में आया है, मेरी प्रतीति में आया है, ज्ञान में आया, परन्तु अब मैं तो मेरे स्वरूप में आचरण करने का इच्छुक हूँ। आहाहा!

कहो, क्षायिक समकिती हो। आहाहा! श्रेणिक राजा क्षायिक समकिती... आहाहा! परन्तु मृत्युकाल में देह छोड़ने का राग आ गया, आपघात किया, तथापि समकित में दोष नहीं और उस समय तीर्थंकर गोत्र बाँधें, उसमें अन्तर नहीं। आहाहा! ऐसे श्रेणिक राजा यहाँ भविष्य में तीर्थंकर होनेवाले हैं। अरेरे! तीर्थंकर के जीव की भी यह दशा! आहाहा! सम्यग्दर्शन है, सम्यग्ज्ञान है, ओहोहो! लड़का, पिताजी को बचाने आता है, मैंने पिताजी को जेल में डाला है, मेरी बड़ी भूल हुई, माताजी ने मुझे चेताया, भाई! तेरा जन्म हुआ था, तब मैंने तुझे कचरे के ढेर में डाल दिया था। वहाँ पिताजी आये, मुझे पूछा बालक कहाँ गया? मैंने डाल दिया है, अरेरे! क्यों डाल दिया? वह मेरे गर्भ में आया था, तब मुझे स्वप्न आता था कि आप का कलेजा खाऊँ; इस कारण मैंने बालक को छोड़ दिया। अरे! आहाहा! वे कचरे में से बालक को ले आते हैं, राजकुमार को (ले आते हैं)। आहाहा! कूकड़ा-कूकड़ा होता है न? कूकड़ा चोंच मारता है, राजकुमार का शरीर कोमल, पीड़ा... पीड़ा... पीड़ा...., श्रेणिक वहाँ जाते हैं और (राजकुमार बालक को) उठा लेते हैं। भाई! तेरे पिता ने यह किया था और उनको तूने जेल में डाला, राज्य करने के लिए? अरे माता! मेरी बड़ी भूल हुई, मुझे पता नहीं था, मैं पिताजी को जेल में से निकालने को जाता हूँ। हाथ में बरछी लेकर गया, और वह (श्रेणिक) मानो कि यह (मुझे मारने आया...) है समकिती ज्ञानी, क्षायिक समकिती, तीर्थंकर का जीव, तीर्थंकर होनेवाला... आहाहा! उन्होंने देह छूटने के (समय) मरने को हीरा चूस लिया। यह भाव कैसा है? पाप है या नहीं? पाप

तो आया है, वेदन में पाप है। आहाहा! परन्तु सम्यग्दर्शन में दोष नहीं है। आहाहा!

यह यहाँ कहते हैं, आहाहा! क्या प्रभु का मार्ग! क्या वीतराग का पन्थ! मैं तो मेरे वीतरागस्वरूप भगवान का मुझे ज्ञान हुआ है; वर्तमान पर्याय निर्मल हुई है, उसका ज्ञान हुआ है; और वर्तमान मैं साथ में दुःख की दशा / अव्रत — अत्याग का भाव है, उस दुःख का ज्ञान भी मुझे हुआ है। आहाहा! समझ में आया? बापू! मार्ग कोई अलौकिक है। आहाहा! वह **इच्छुक होता हुआ पूछता है....** देखा? अब राग का-दुःख का त्याग नहीं किया (कहा) यहाँ तो स्वरूप का आचरण करने का इच्छुक होता हुआ - ऐसा शब्द लिया है। भाई! राग का अत्याग है, उसका मैं त्याग करूँ — क्या कहा? समझ में आया? मैं राग का त्याग करने का इच्छुक — ऐसा नहीं लिया। ऐसा शब्द नहीं लिया; मैं तो मेरा स्वरूप, आहाहा!

श्रोता : अस्ति से है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अस्ति से लिखा है परन्तु मैं तो स्वरूप का आचरण करने का इच्छुक हूँ। सम्यग्दृष्टि है, सम्यग्ज्ञानी है, स्व का अनुभव है। सब ज्ञान हुआ है, आहाहा! तो मेरे प्रभु! मेरे आनन्द के नाथ का आचरण, अल्प आचरण हुआ है, परन्तु विशेष आचरण नहीं है। अभी मुझ में अत्यागभाव है तो मैं मेरे स्वरूप में आचरण करने का इच्छुक (हूँ) आहाहा! वह पूछता है। देखो तो! शैली तो देखो! आहाहा!

अरे! जगत् को सत्य सुनने को नहीं मिलता, वह कब समझे प्रभु! और यह भव एक-एक समय चला जा रहा है। जिसकी कौस्तुभ मणि की कीमत से भी एक समय की कीमत कीमती है, मनुष्यभव में यदि यह नहीं किया तो उसने कुछ नहीं किया। आहाहा! यहाँ तो सम्यग्दर्शन हुआ और सम्यग्ज्ञान हुआ और भव का नाश हुआ, अनन्त का; अनन्त का हुआ, परन्तु अभी थोड़ा राग का अत्यागभाव है, राग का आचरण है तो प्रभु! गुरु के पास जाते हैं। प्रभु! परन्तु आपको तो सब ज्ञान है और समकित है और हमें पूछते हो? विनय से पूछते हैं। (गुरु बोले) तुमको तो सम्यग्दर्शन है तो ख्याल है कि स्वरूप में स्थिर रहूँगा, तब राग का त्याग होगा, वह तो तुम्हें पता है। परन्तु मैं तो प्रभु आहाहा... आहाहा! ऐसा आचरण करने का इच्छुक, उसी का आचरण करने का इच्छुक; राग का त्याग करने का इच्छुक — ऐसा नहीं लिया। समझ में आया? आहाहा!

मेरे आनन्द का नाथ अतीन्द्रिय प्रभु सागर, उसका मुझे ज्ञान हुआ है, प्रतीति हुई है, अनुभव हुआ है, परन्तु मेरे आचरण में कमी है तो मेरे स्वरूप में आचरण करने का मैं इच्छुक - अभिलाषी हूँ। आहाहा! है तो विकल्प, आहाहा! गुरु के पास-महासन्त मुनि के पास कहते हैं। प्रभु! आप समकिती हैं, ज्ञानी हैं, सब जानते हैं, मैं जानता हूँ प्रभु! परन्तु मेरी भावना अब अन्तरस्वरूप में रमने की हुई है, मेरी पर्याय में राग-द्वेष का आचरण का दुःख है, मेरे ख्याल में आ गया है परन्तु मैं अब तो मेरे स्वरूप में आचरण करने का अभिलाषी हूँ। आहाहा!

'**इस आत्माराम को.....** पूछता है कि इस आत्माराम को, आतमराम प्रभु, चैतन्य के बाग में आत्मा रमता है, आहाहा! ऐसा आत्मा। आतमराम! जैसे बाग में फूल होते हैं, फूल वृक्ष में सुगन्ध देते हैं, वैसे ही भगवान में अनन्त गुण हैं, उस आतमबाग में आत्मा — ज्ञानी अन्तर में रमते हैं - आतमराम... आहाहा! '**इस आत्माराम को अन्य द्रव्यों का (त्यागना) क्या है ?**' प्रभु ? मैं मेरा आचरण करने का अभिलाषी, परन्तु अब राग का मैं त्याग करूँ ? है ? '**द्रव्यों का प्रत्याख्यान (त्यागना) क्या है ?**' आहाहा! ऐसी बात है बापू! यह तो महा भगवान तीन लोक का नाथ, तीर्थंकर की वाणी और उसे इन्द्र सुनें — एकावतारी इन्द्र... एक भवतारी इन्द्र, शक्रेन्द्र है, देव है; वहाँ से मनुष्य होकर मोक्ष जानेवाला है, वह समकिती है, शक्रेन्द्र है, सौधर्म देवलोक... वह इन्द्र जब सभा में आता है और भगवान यह बात करते हैं, वह बात कैसी होगी! हैं ? आहाहा! भव्य के भाग्य के योग से भगवान की वाणी निकलती है - आता है न ? 'भविभागन वश जोगे...'

भाई! यहाँ तो अन्तर की बातें हैं नाथ... आहाहा! सम्यग्दर्शन हुआ, सम्यग्ज्ञान हुआ, अनुभव हुआ तो भी अब उसे स्वरूप का आचरण करने का अभिलाषी... यहाँ मेरी पर्याय में राग-द्वेष का-दुःख का आचरण है, प्रभु! तो अब तो मैं आनन्द का आचरण करने का इच्छुक (हूँ)। इस राग और दुःख का त्याग कैसे होता है ? ज्ञान तो है परन्तु स्थिरता के लिए प्रश्न करता है। आहाहा! '**इस आत्माराम को अन्य द्रव्यों का प्रत्याख्यान...**' रागादि का त्याग... राग तो अन्य द्रव्य है न ? दुःख की दशा अपने में है परन्तु है तो परवस्तु; वह अपनी चीज नहीं है। आहाहा! यह लोग सम्यग्दर्शन के बिना प्रत्याख्यान करे, वह तो

प्रत्याख्यान है ही नहीं; वह सब तो अज्ञान है। ऐ जयन्तीभाई! यह सब तुम सबने अभी तक क्या किया? अभी इनके भतीजे ने किया था न? आठ अपवास, यहाँ मूँगा दिया, था न तुमने क्या किया था? आठ अपवास या दस? आठ। जिमाया था न! परन्तु यहाँ यह नहीं बापू! आहाहा! यह आत्मज्ञान रहित त्याग, वह त्याग नहीं है, वह तो अन्दर मिथ्यात्वभाव है।

श्रोता : वह धर्म का त्याग नहीं हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वभाव का त्याग हुआ। राग की क्रिया करते हैं और मैं धर्म करता हूँ (ऐसा मानते हैं), यह तो स्वभाव का त्याग हुआ। आहाहा! कहो छोटाभाई! यह ऐसी बात है। कलकत्ता में कहीं मिले — ऐसा नहीं है। सर्वत्र भटकने के रास्ते हैं। इसलिए उन लोगों को एकान्त लगता है, इसलिए बेचारे विरोध करते हैं। तो भी अभी बहुत हुआ, कलकत्ता से पत्र आया। भाई गये थे न ज्ञानचन्दजी। पाटनीजी! ज्ञानचन्दजी गये थे, तो पत्र आया लोग (व्याख्यान में) बहुत आते थे, और विरोधियों को भी जरा सा क्षमा का भाव, हमारी भूल थी भाई! सबने क्षमा की। कलकत्ता में, और अजमेर में.... अजमेर में तो कभी पचास वर्ष में ऐसा नहीं हुआ था। हुकमचन्दजी गये, हुकमचन्दजी (का) अभी बहुत क्षयोपशम बहुत! लोग कहते हैं ऐसी बात हमने पचास वर्ष में नहीं सुनी। इतनी लोगों की भीड़ अजमेर में, वरना तो वहाँ तो भागचन्दजी सोनी जरा मुनि-भगत तत्त्व का विरोध.... परन्तु वह माने कि हमारी दृष्टि ठीक है परन्तु वह सब लोग समाते नहीं थे। उनने भी कहा ऐसी बात हमने सुनी नहीं। पचास वर्ष से अजमेर में हमने ऐसी बात सुनी नहीं, कल पत्र आया है। आहाहा! थी कहाँ, वस्तु कहाँ थी? यह तो यहाँ से निकलने की बाद बात है, आहाहा! परन्तु इतना नरम होकर ऐसा, वरना तो अजमेर तो पूरा गाँव लगभग... अमुक भजनमण्डली या ऐसे कोई-कोई प्रेमी पूनमचन्द पहाड़िया (लुहाड़िया) लड़का है, दो भाई बहुत प्रेमी हैं। ऐसे थोड़े होंगे, बाकी अभी तो इतना रस जग गया है कि यहाँ शिक्षण-शिविर करो, पच्चीस हजार रुपये निकाले। इस प्रकार का शिक्षण-शिविर! आहाहा! जगत का भाग्य है न? ऐसी यह वस्तु प्रभु! यह शिक्षण-शिविर तो दूसरे प्रकार का है। आहाहा! आत्मज्ञान बिना, सम्यग्दर्शन बिना जो यह अपवास और त्याग और ऐसा माने कि हमने अपवास किया, यह सब मिथ्यात्व हठभाव है।

श्रोता : गुरु उसे लंघन कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे लंघन ही कहते हैं। 'कषायविषाहारो त्यागो यत्र विधीयते, उपवासः स विज्ञेयः शेषं लंघनकं विदुः।' राग का त्याग, इच्छा का त्याग आदि। आहाहा! वह त्याग हो, वहाँ उपवास होता है। वहाँ आत्मा के पास वसै, उपवासी, शेषं लघंनं - शेष लंघन है। आहाहा! वस्तुस्वरूप ऐसा है। आहाहा! कितनी बात लिखी है भाई! स्वरूप का ज्ञान हुआ, अनुभव हुआ - ज्ञान हुआ, वह प्रश्न करता है (कि) मेरे स्वरूप में आचरण करने का मैं इच्छुक हूँ। आहाहा! मेरी पर्याय में राग और द्वेष का अत्यागरूपी दुःख का वेदन है। आहाहा! सम्यग्दृष्टि ज्ञानी.... प्रभु! इस वेदन का त्याग — मेरे स्वरूप में आचरण करने का अभिलाषी, इस दुःख के वेदन का त्याग क्या है? जानते हैं परन्तु गुरु के समीप विनय से (पूछते हैं)। आहाहा! नम्रता है न? आहाहा!

गाथा ३४

सव्वे भावे जम्हा पच्चक्खाई परे त्ति णादूणं।
तम्हा पच्चक्खाणं णाणं णियमा मुणेदव्वं।।३४।।

सर्वान् भावान् यस्मात्प्रत्याख्याति परानिति ज्ञात्वा।
तस्मात्प्रत्याख्यानं ज्ञानं नियमात् ज्ञातव्यम्।।

यतो हि द्रव्यान्तरस्वभावभाविनोऽन्यानखिलानपि भावान् भगवज्ज्ञातृद्रव्यं स्वस्वभावभावाव्याप्यतया परत्वेन ज्ञात्वा प्रत्याचष्टे, ततो य एव पूर्वं जानाति स एव पश्चात्प्रत्याचष्टे, न पुनरन्य इत्यात्मनि निश्चित्य प्रत्याख्यानसमये प्रत्याख्येयोपाधिमात्रप्रवर्तितकर्तृत्वव्यपदेशत्वेऽपि परमार्थेनाव्यपदेश्यज्ञानस्वभावादप्रच्यवनात् प्रत्याख्यानं ज्ञानमेवेत्यनुभवनीयम्।

सब भाव पर ही जान, प्रत्याख्यान भावों का करे।
इससे नियम से जानना कि, ज्ञान प्रत्याख्यान है॥३४॥

गाथार्थ : [यस्मात्] जिससे [सर्वान् भावान्] अपने 'अतिरिक्त सर्व पदार्थों को [परान्] पर हैं' [इति ज्ञात्वा] ऐसा जानकर [प्रत्याख्याति] प्रत्याख्यान करता है — त्याग करता है, [तस्मात्] उससे, [प्रत्याख्यानं] प्रत्याख्यान [ज्ञानं] ज्ञान ही है, [नियमात्] ऐसा नियम से [ज्ञातव्यम्] जानना। अपने ज्ञान में त्यागरूप अवस्था ही प्रत्याख्यान है, दूसरा कुछ नहीं।

टीका : यह भगवान ज्ञाता-द्रव्य (आत्मा) है वह अन्य द्रव्य के स्वभाव से होनेवाले अन्य समस्त परभावों को,उनके अपने स्वभावभाव से व्याप्त न होने से पररूप जानकर, त्याग देता है; इसलिए जो पहले जानता है वही बाद में त्याग करता

है, अन्य कोई त्याग करनेवाला नहीं है — इस प्रकार आत्मा में निश्चय करके, प्रत्याख्यान के (त्याग के) समय प्रत्याख्यान करनेयोग्य परभाव की उपाधिमात्र से प्रवर्तमान त्याग के कर्तृत्व का नाम (आत्मा को) होने पर भी, परमार्थ से देखा जाये तो परभाव के त्याग कर्तृत्व का नाम अपने को नहीं है, स्वयं तो इस नाम से रहित है क्योंकि ज्ञानस्वभाव से स्वयं छूटा नहीं है, इसलिए प्रत्याख्यान ज्ञान ही है — ऐसा अनुभव करना चाहिए।

भावार्थ : आत्मा को परभाव के त्याग का कर्तृत्व है वह नाममात्र है। वह स्वयं तो ज्ञानसवभाव है। परद्रव्य को पर जाना, और फिर परभाव का ग्रहण न करना वही त्याग है। इस प्रकार, स्थिर हुआ ज्ञान ही प्रत्याख्यान है, ज्ञान के अतिरिक्त दूसरा कोई भाव नहीं है।

गाथा - ३४ पर प्रवचन

'इस आत्माराम को अन्य द्रव्यों का प्रत्याख्यान (त्यागना) क्या है ?' उसको आचार्य इस प्रकार कहते हैं कि — (गाथा) ३४

सव्वे भावे जम्हा पच्चक्खाई परे त्ति णादूणं।
तम्हा पच्चक्खाणं णाणं णियमा मुणेदव्वं।।३४।।

सब भाव पर ही जान, प्रत्याख्यान भावों का करे।
इससे नियम से जानना कि, ज्ञान प्रत्याख्यान है॥३४॥

आहाहा! गाथार्थ थोड़ा लेते हैं। **जिससे अपने 'अतिरिक्त सर्व पदार्थों को पर हैं' ऐसा जानकर....** राग — दया, दान का राग, भक्ति का, विनय का राग आता है परन्तु जानता है कि यह पर है; मेरी चीज नहीं। मेरी पर्याय में होता है परन्तु मेरी चीज नहीं। आहाहा! **ऐसा जानकर प्रत्याख्यान करता है — त्याग करता है, उससे, प्रत्याख्यान ज्ञान ही है,....** अर्थात् जाना कि यह राग है — ऐसा जानकर ज्ञान में स्थिर हो गया, वह प्रत्याख्यान है। ज्ञानस्वरूपी भगवान ज्ञान में लीन हो गया, वह प्रत्याख्यान है। आहाहा!

आहाहा! बात तो बात, तीन लोक के नाथ की वाणी! सन्त उसे जगत को जाहिर

करते हैं - आड़तिया होकर प्रसिद्ध करते हैं। आहाहा... आहाहा! प्रभु तो ऐसा कहते थे, प्रभु का मार्ग तो यह है। आहाहा! समझ में आया? किसका गर्व करना — किसका अभिमान करना? आहाहा! यश लेना, इज्जत लेना, भाई! क्या है तुझे? तुझे कहाँ जाना है नाथ? आहाहा! तेरे स्वरूप का आचरण करना, यह तेरा यश है। आहाहा! आहा! **ऐसा नियम से जानना।**

अपने ज्ञान में त्यागरूप अवस्था ही प्रत्याख्यान है,.... क्या कहते हैं? भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूपी का दृष्टि ज्ञान-अनुभव तो हुआ; अब ज्ञान, ज्ञान में रहता है, ज्ञान, ज्ञान में रमता है, उसका नाम प्रत्याख्यान है। आहाहा! यह कोई बाहर का त्याग किया, यह प्रत्याख्यान... यह प्रत्याख्यान नहीं है, बापू! यह तो अज्ञानभाव है। सुन तो सही! समझ में आया? जहाँ आत्मा ज्ञानस्वरूपी प्रभु, अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ प्रभु, सच्चिदानन्द प्रभु, उस-सत् शाश्वत् आनन्द और ज्ञान का सागर प्रभु, वह जहाँ भान में आया, ज्ञान हुआ कि मैं तो पूर्णानन्द और पूर्ण ज्ञानस्वरूप हूँ — ऐसा जीव, ज्ञान स्वभाव में स्थिर हो जाता है, वह प्रत्याख्यान है। आहाहा... आहाहा! वहाँ यह आनन्द की धारा विशेष बही। ज्ञान, ज्ञान में स्थिर हुआ। जिस ज्ञानस्वरूप का भान था, आंशिक आचरण था, एक अंश.... श्रद्धा थी समकित था, ज्ञान था और आंशिक आचरण भी था परन्तु यह तो विशेष ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा में जहाँ लीन हुआ, आत्मा का आश्रय करके (लीन हुआ) तो वह ज्ञानस्वरूपी परिणमन आनन्दरूपी हुआ, वही प्रत्याख्यान है। आहाहा! ऐसा यह प्रत्याख्यान है। कहो, नौलमभाई! तुमने तो ऐसा सुना भी नहीं होगा, स्थानकवासी में तो यह करो और वह करो....

श्रोता : सच्चा स्थानक-वास अन्दर में होता है न? अन्य तो बनावटी हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह स्थानक अन्दर है भगवान! कल आया था न? स्थायी... स्थायी इति... भगवान ध्रुव स्थान है, स्थान है। वहाँ बस न! वह स्थानक वासी है।

श्रोता : अन्य तो बाहर का....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो अज्ञान है। आहाहा... आहाहा!

अपने ज्ञान में त्यागरूप अवस्था अथवा अपने ज्ञान में राग के अभावरूप अवस्था,

अर्थात् आनन्द की उग्र अवस्था, वह प्रत्याख्यान है। आहाहा! यहाँ तो सम्यग्दृष्टि ज्ञानी को भी राग का-दु:ख का वेदन है। आहाहा! कोई कहे कि ज्ञानी को दु:ख का वेदन ही नहीं- यह दृष्टि मिथ्यात्व है। वह कोई वस्तु को नहीं समझता है। समझ में आया? आहाहा! और दु:ख का वेदन करना, वह तीव्र कषाय है - ऐसा कहते हैं। वह अज्ञान है, मूढ़ है। अरे! छठवें गुणस्थान तक दु:ख का वेदन है, सातवें में भी अबुद्धिपूर्वक दु:ख का वेदन है। अरे! दशवें तक भी अबुद्धिपूर्वक दु:ख का वेदन है। भाई! तुझे पता नहीं। पूर्णानन्द जब तक प्रगट नहीं हो, तब तक दु:ख का अंश अन्दर है। आहाहा... आहाहा! मार्ग बहुत सूक्ष्म! आहाहा!

टीका : यह भगवान ज्ञाता.... भाषा देखो! भगवान ज्ञातादृष्टा आहाहा! **ज्ञाता-द्रव्य....** आहाहा! यह प्रभु आत्मा तो ज्ञायकद्रव्य है। सर्वज्ञ-सर्वज्ञ स्वभावी द्रव्य है — ऐसा न कहकर ज्ञायक कहा है। ऐसा कहकर ज्ञानस्वभावी ज्ञाता कहा। आहाहा! परन्तु भगवान आत्मा - भाषा ऐसी ली है। आहाहा! एक जगह बाहर बात गयी - आत्मा को भगवान कहते हैं। उसने कहा नहीं। नहीं। अभी भगवान नहीं होता। अरे सुन न प्रभु! कोई बाहर से आया था, अभी भगवान नहीं होता। अरे भगवान! तीनों काल आत्मा तो भगवान ही है। उसका स्वभाव तो भगवान ही है, पर्याय में भूल है। आहाहा! भगवानपना न हो तो पर्याय में भगवानपना आयेगा कहाँ से? कोई बाहर से आती है कोई चीज? प्राप्त की प्राप्ति है। भगवान - भग अर्थात् आनन्द और ज्ञान की लक्ष्मी; वान अर्थात् उसका स्वरूप। भगवान ज्ञान और आनन्द लक्ष्मीवान यह आत्मा है। आहाहा!

श्रोता : दो प्रकार की लक्ष्मी लगती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल की लक्ष्मी वह तो भटकने की है, मार डालने की। पैसा धूल, अजीव धूल, मिट्टी धूल। मैं लक्ष्मीवान हूँ, मैं लक्ष्मीपति हूँ, जड़पति हूँ। आहाहा! यहाँ तो दूसरी बात है बापू! वह लक्ष्मी-अजीव तो कहीं रह गयी परन्तु अन्दर में राग है, उसका मैं स्वामी हूँ, वह भी मिथ्यादृष्टि है। ज्ञानी को वेदन है परन्तु वह मेरी चीज नहीं। मेरे वेदन में आती है, इस अपेक्षा से मेरे मैं है परन्तु वह मेरी त्रिकाली चीज में नहीं। आहाहा! समझ में आया? अब एक अपेक्षा से ऐसा भी कहा; दूसरी अपेक्षा से प्रवचनसार

में नय अधिकार में ऐसा भी कहा कि ज्ञानी को आत्मज्ञान हुआ, सम्यग्दर्शन हुआ, उसको भी जो राग आता है, दुःख होता है, उसका वह स्वामी है। सैंतालीस नय में लिया है। समझ में आया? क्योंकि उसकी पर्याय में होता है। किसी पर से होता और पर में होता है — ऐसा नहीं है। आहाहा! समकिती-ज्ञानी, परन्तु अपनी पर्याय में जो दुःख की-इस अत्यागभाव की पर्याय होती है, उसका भी स्वामी तो मैं हूँ। आहाहा! परन्तु उसका अब मैं आचरण करने का अभिलाषी, वह स्वामीपना मेरी पर्याय में राग का है, दुःख का है, उसका त्याग, प्रत्याख्यान कैसे हो? इसकी बात विशेष कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)